संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 7 पृष्ठ : 14 फरवरी 2012 नयी दिल्ली

टीआरपी निगरानी या बेमानी

रंगीली होली और रसहीन मीडिया

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
टीआरपी निगरानी या बेमानी 3

न्यू मीडिया
वैकल्पिक पत्रकार बन चुके हैं– सिटिजन जर्नलिस्ट 5

परिप्रेक्ष्य
रंगीली होली और रसहीन मीडिया 6

विचार
पत्रकारिता पवित्र सेवा कार्य है– दशरथ प्रसाद द्विवेदी 8

साक्षात्कार
सूचना का माध्यम 'पश्चिमी गेटकीपर्स' – विजय क्रान्ति 9

श्रद्धा सुमन
मतवाला पत्रकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला 11

परिचर्चा
मानवाधिकार का समर्थन या हनन 12

शोध
''पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश के आर्थिक – सामाजिक विकास में स्थानीय समाचार पत्रों की भूमिका तथा पाठकों की प्रतिकिया'' 13

मीडिया शब्दावली 14

जिस इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की मनमानी पर तमाम कानून लगाम नहीं लगा पाते उसे टीआरपी नाम का अंकुश पलक झपकते काबू में कर लेता है। मजे की बात यह है कि कौन वे अफलातून हैं जिनकी राय टीआरपी तय करती है, यह कोई नहीं जानता।

सुनने में आता है कि कुछ हजार घरों में लगे टीआरपी के डब्बों से तय हो जाता है कि देश की 120 करोड़ जनता क्या देखना चाहती है। समस्या यह है कि इस रेटिंग की सत्यता का पता लगाने की कोई पद्धति नहीं विकसित हुई है। जिस प्रकार चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और एक्जिट पोल पिछले वर्षों में चुनाव परिणामों की घोषणा होने पर औंधे मुंह गिरते देखे गये हैं, अनुमान लगाया जा सकता है कि कमो–बेश यही हालत टीआरपी की भी हो सकती है।

संवादसेतु के इस अंक में टीआरपी से जुड़ी प्रारंभिक जानकारी और बुनियादी सवालों को स्थान दिया गया है। यह विषय का यदृच्छया चुनाव नहीं बल्कि एक बहस की शुरुआत है जिसमें सभी पाठकों की सहभागिता भी अपेक्षित है।

'टीआरपी निगरानी या बेमानी' के लेखक के लेखकीय अधिकारों का आदर करते हुए हमने उनके लेख को यथावत लिया है। वरिष्ठ पत्रकार आशुतोष का अनेक बार उल्लेख करते हुए उन्होंने अपनी पीड़ा को अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

विडंबना यह है कि आशुतोष जैसे पत्रकार भी अनेक बार इस टीआरपी के खेल के सामने नतमस्तक दिखायी देते हैं। कुछ महीने पहले पत्रकारों के बीच बोलते हुए पुण्यप्रसून वाजपेयी ने भी इसी प्रकार की मजबूरी जाहिर की थी। उन्होंने पत्रकारीय मूल्यों पर बाजार के हावी होने को दुखद बताया लेकिन यही सच है, यह भी स्वीकार किया। इन दोनों ही पत्रकारों के बारे में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आत्मा के स्तर पर आज भी वे मूल्यों में जीते हैं, अपने लोगों के बीच सच बोलने में हिचकते भी नहीं हैं।

यह बार–बार देखने में आता है कि सूचना साम्राज्य में शिखरों पर बैठे लोग मजबूर हैं जबकि पत्रकारिता का ककहरा सीख रहे नौजवान इस दुरावस्था के विरुद्ध ताकत भर जूझ रहे हैं। यही कारण है कि हजारों करोड़ (शायद लाखों) रुपये के इस बाजारोन्मुखी साम्राज्य की विश्वसनीयता लगातार छीज रही है। दूसरी ओर इन्टरनेट आधारित समानान्तर मीडिया, जिसके तथ्यों की परख असंभव है, निरंतर लोकप्रिय होती जा रही है। विज्ञापन और बाजार वे परजीवी हैं जो पत्रकारों के शब्दों की विश्वसनीयता को चूस कर अपने आप को जिन्दा रखते हैं। जो लोग इन परजीवियों के लिये शब्दों का उत्पादन करते हैं शिकायत उनसे नहीं। उनके लिये तो यह पापी पेट का सवाल है। अपेक्षा उनसे है जो शब्दों की साधना करते हैं। पत्रकारिता की गरिमा वहीं बचायेंगे जो बाजार की दुहाई देने के बजाय तथ्य और सत्य के पक्ष में पूरे आत्मविश्वास और स्वाभिमान के साथ खड़े होंगे।

भवदीय

संपादक

टीआरपी निगरानी या बेमानी

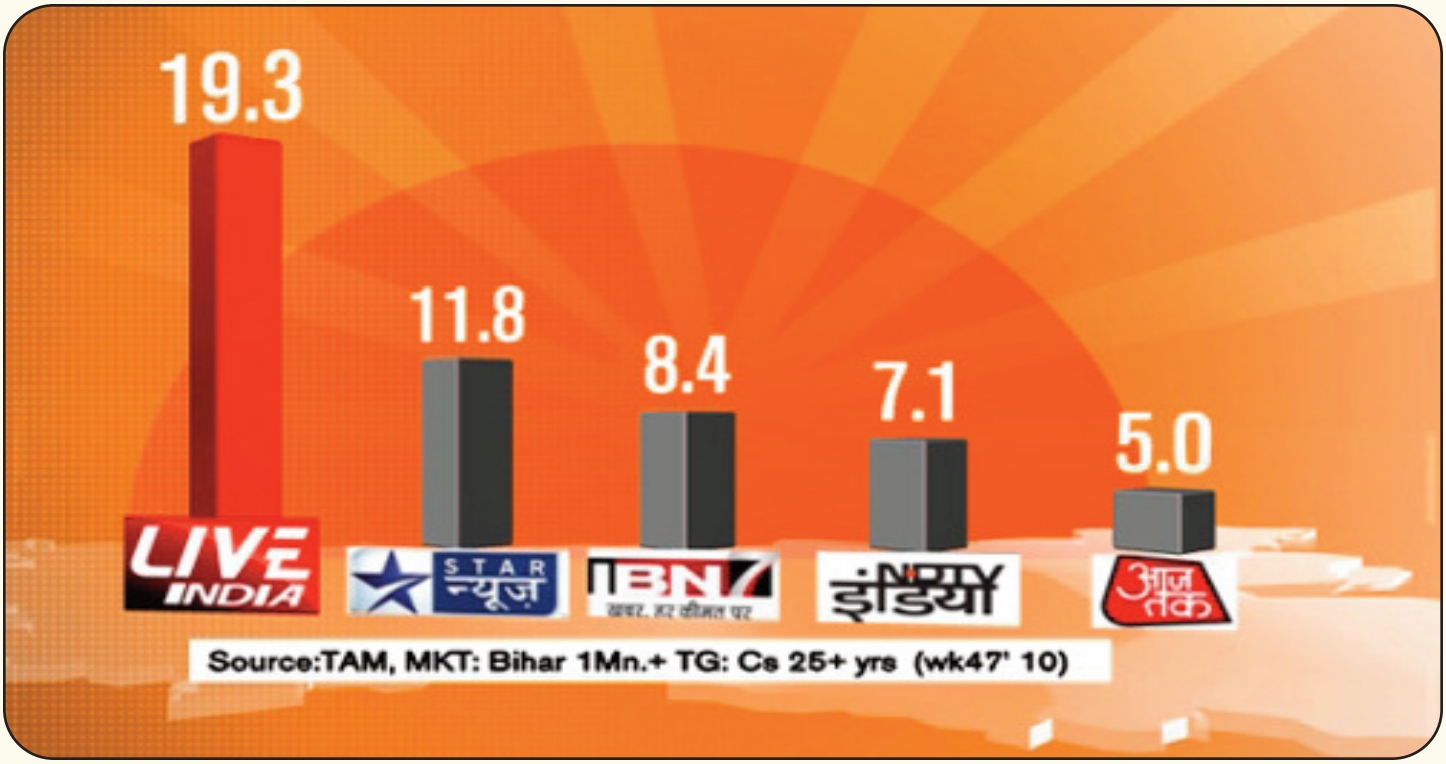

पवन सिंह

देश का चौथा स्तम्भ कही जाने वाली मीडिया में भी वर्तमान समय में काफी प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। आज हर चैनल खुद को नंबर एक कहलाने के लिए व्यावसायिकता के हर सीमा को पार करता जा रहा है, जहां से तथ्य व वास्तविकता कोसो दूर होते दिखाई दे रहें हैं। इस नम्बर एक की दौड़ में टीआरपी अर्थात टेलीविजन रेटिंग प्वांइट्स की भूमिका सर्वोपरि है। यह टीआरपी ही सुनिश्चित करती है कि कौन सा टेलीविजन सबसे अधिक लोकप्रिय है।

वर्तमान समय में देश में चैनलों की टीआरपी निर्धारित करने का कार्य टैम मीडिया रिसर्च नामक कंपनी करती है। टैम का मतलब है टेलीविजन ऑडियंस मिजरमेंट। इसके अलावा एक दूसरी कंपनी एमैप भी रेटिंग तय करने का कार्य करती है। हालांकि कुछ दिनों पूर्व ही मीडिया में ही यह खबर आयी थी कि एमैप बंद होने जा रही है। इस संदर्भ में कंपनी के प्रबंध निदेशक रवि रतन अरोड़ा ने अपने जारी बयान में यह स्पष्ट किया कि कंपनी अपना कारोबार नहीं समेट रही है, बल्कि कुछ तकनीकी समस्याओं के कारण इसे चार माह तक रोका जा रहा है।

एमैप की अगर बात करें तो सन् 2004 से आरम्भ होने वाली यह संस्था अभी तक 7,200 मीटरों के माध्यम से रेटिंग तैयार करने का कार्य कर रही थी। वहीं 1998 से शुरू हुई टैम के कुल मीटरों की संख्या 8,150 है, जिनमें से 1,007 मीटर डीटीएच कैस और आईपीटीवी वाले घरों में हैं, जबकि 5,532 मीटर एनालॉग केबल और 1,611 मीटर गैर केबल अर्थात दूरदर्शन वाले घरों में हैं। इन मीटरों के सहारे ही टीआरपी निर्धारित की जाती है। एक मीटर की लागत 75,000 से 1 लाख रूपये के मध्य होती है। जब यह मीटर संबंधित घरों के टेलीविजन सेट से जोड़ दिए जाते हैं तो किस घर में, कौन सा चैनल, कितनी देर देखा गया है, इस मीटर के माध्यम से पता चल जाता है और इसी आधार पर रेटिंग का निर्धारण किया जाता है। टैम सप्ताह में एक बार अपनी रेटिंग जारी करती है और इसमें यह भी सुनिश्चित कर दिया जाता है कि किस चैनल के कौन से कार्यक्रम को कितनी रेटिंग मिली। इस आधार पर विज्ञापनदाता भी अपने उत्पाद को देखते हुए उस चैनल को अपना विज्ञापन अधिक देते हैं, जिसकी रेटिंग प्वांइट्स सबसे अधिक होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चैनलों की आमदनी का सबसे बड़ा माध्यम विज्ञापन होते हैं जो कि उसके रेटिंग प्वांइट्स पर आधारित होते हैं।

वर्तमान समय में जहां इस रेटिंग प्वांइट्स के आधार पर ही चैनलों की कमाई है, तो जाहिर सी बात है कि इस व्यावसाय में हर व्यावसायी खुद को शीर्ष पर देखने की अभिलाषा रखता होगा और प्रतिस्पर्धा की इस दौड़ में वह हर सम्भव प्रयास करने को आतुर होगा। इस प्रयास का एक उदाहरण एक विदेशी वेबसाइट के हवाले से आंध्र प्रदेश के कई न्यूज चैनलों द्वारा वाईएसआर की मौत से जुड़ी अपुष्ट खबर दिखाया जाना भी रहा। इस भ्रामक खबर को सच मान कर वहां की जनता सड़कों पर उतर गई थी। इसके बाद टीवी न्यूज चैनलों की भूमिका को लेकर देशव्यापी बहस शुरू होने के इस दौर में

आईबीएन 7 के मैनेजिंग एडिटर आशुतोष ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय न्यूज चैनलों से प्रेरणा लेकर क्षेत्रीय चैनल भी टीआरपी के लिए सनसनीखेज, अपुष्ट व अफवाह आधारित खबरें दिखाने लगे हैं।

यहां तक कि आशुतोष ने अपने एक लेख में भी न्यूज चैनलों में गिरावट के दौर के बारे में चर्चा करते हुए लिखा है कि–''पिछले पांच सालों में न्यूज चैनलों में भयानक भटकाव दिखा। किसी का नाम लेना सही नहीं होगा लेकिन इसकी शुरूआत तब हुई जब 2004 में एक साथ कई चैनल बाजार में आये और उस समय के नंबर वन रहे चैनल को मात देने का काम शुरू हुआ। नंबर वन बनने के लिए तब यह जरूरी हो गया कि आपके पास सबसे अधिक टीआरपी हो और जल्द ही यह पता चल गया कि न्यूज चैनल में टीआरपी न्यूज से नहीं आती। टीआरपी के लिए जरूरी हैं दो चीजें, या तो न्यूज को इस तरह से पेश किया जाए कि वह लोगों को बांध कर रखे यानी सनसनीखेज या फिर खबरों की नई दुनिया तलाशी जाए।''

आशुतोष टीवी न्यूज चैनल में हो रहे आंतरिक सुधार के बारे में इसी आलेख में एक जगह लिखते हैं–''गलतियां इतनी ज्यादा थी कि अच्छाई गौण हो गई। लोगों का गुस्सा आसमान पर चढ़ने लगा। सरकारों ने भवें तानी और टीआरपी की रेस में शामिल कुछ लोगों को शर्म भी आयी। समझ में आया यह सही नहीं है। फिर अंदरूनी सुधार की कोशिश शुरू हुई। बदलाव भी आने लगा। आज यह कह सकते हैं कि हालात काफी बेहतर हैं। खबरों को फिर से स्पेस मिलने लगा है, लेकिन अभी भी दिल्ली काफी दूर है।''

वास्तव में अगर देखा जाये तो इस बाबत न्यूज चैनलों को सही मार्ग पर लाने के लिए आशुतोष द्वारा दिए गए सुझाव प्रासंगिक व उचित हैं। उनके द्वारा दिए गए सुझावों में कुछ मुख्य रूप से इस प्रकार हैं– एक–रेटिंग सिस्टम अर्थात टीआरपी को तुरन्त बंद करना होगा। दो– न्यूज चैनलों की तुलना मनोरंजन चैनलों से न की जाये। तीन– प्रत्येक न्यूज चैनल के कंटेंट की हर तीन या छः माह पर स्वतंत्र एडीटर्स की संस्था आडिट करें। चार– चैनल को नो प्रॉफिट, नो लॉस की तर्ज पर चलाया जाये। पांच– न्यूज चैनल की शिकायत को सुनने और उसके निराकरण के लिए एक गैर सरकारी संस्था बने जो फैसला सुनाये और हर चैनल उसे मानने के लिए बाध्य हो।

इसके साथ ही साथ सरकार द्वारा भी इस प्रकार से रेटिंग प्वाइंट्स की दौड़ में दौड़ रहे इन चैनलों पर लगाम लगाने के लिए कड़े कदम उठाये जाने वाले हैं। सरकार का इस ओर ध्यान आकर्षित होने के बाद से ही चैनलों के इस मकड़जाल को खत्म करने के लिए सरकार ने अब ब्रॉडकास्टिंग ऑडियंस रिसर्च काउंसिल (बार्क) को दोबारा उबारने की योजना बनायी है। इसके लिए केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री अंबिका सोनी ने पहल कर दी है। अंबिका सोनी ने कहा है कि दर्शकों को कौन सा टीवी चैनल पसंद है और कौन सा नहीं, इसका आंकलन सिर्फ दस हजार बक्सों के माध्यम से नहीं लगाया जा सकता है। दर्शकों की पसंद का पता लगाने के लिए आंकलन के तरीके के दायरे को बढ़ाना होगा। यह आंकलन शहरी और ग्रामीण टीवी दर्शकों की पसंद के आधार पर होना चाहिए। गौरतलब है कि टीआरपी का आंकलन दस हजार बक्सों के जरिए ही होता है।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की ओर से जिस उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जाएगा वह मौजूदा टीआरपी सिस्टम पर नजर रखने के साथ–साथ इस बात की भी जांच करेगी कि क्या सरकार को कोई कानून बनाकर एक ऐसा मैकेनिज्म तैयार करना चाहिए जो टीआरपी रेटिंग सिस्टम में खुद शामिल हो सके या फिर निजी हाथों में रहते हुए ही इस पर नजर रखी जा सके। यह समिति पारदर्शी टीआरपी व्यवस्था के लिए मैकेनिज्म तैयार करने के लिए भी सरकार को सुझाव देगी। गौरतलब है कि टीआरपी सिस्टम टीवी चैनलों पर जुटाए जाने वाले करीब दस हजार करोड़ रूपये के एड रेवेन्यू का भविष्य तय करता है। असल में टैम अब तक निजी चैनलों पर ही ध्यान देता था और दूरदर्शन को दायरे में लेता ही नहीं था लेकिन अब सरकार की बोली बदलते ही उसकी बोली भी बदल गयी है। अब देखना यह है कि क्या वास्तव में सरकार द्वारा इस पर नियंत्रण किया जा सकेगा या अन्य योजनाओं की तरह यह योजना भी पिटारे में बंद ही रहेगी! ■

वैकल्पिक पत्रकार बन चुके हैं– सिटिजन जर्नलिस्ट

वंदना शर्मा

न्यू मीडिया के बढ़ते प्रचलन से आज दुनिया में इसके कई रूप सामने आए हैं। मीडिया का चेहरा हर दिन बदलता जा रहा है जो अपने साथ एक नयापन लिए बेखौफ होकर चलता जा रहा है। अनेक क्षेत्रों को न्यू मीडिया ने अपने अंदर समेट लिया है।

न्यू मीडिया ने सिटिजन जर्नलिस्ट को एक बड़ा मंच दिया है। न्यू मीडिया में सिटिजन जर्नलिस्ट की परिकल्पना को अभी ज्यादा समय भी नहीं हुआ है और आमजन के बीच पूरी तरह से फैल गया है। सिटिजन जर्नलिज्म के कारण ही आज मीडिया की बची– खुची विश्वसनीयता कायम है।

मीडिया की पारदर्शिता के लिए सिटिजन जर्नलिज्म बहुत महत्वपूर्ण बन गया है। अब दर्शक या पाठक अपनी भूमिका को बेहतर समझने लगा है। 'लैटर–टू–एडिटर' या 'हां या ना' के संदेशों से आगे निकलकर दर्शक अधिक सक्रिय हो गया है। आम आदमी सूचनाओं को हथियार के तौर पर प्रयोग करने में सक्षम हो चुका है।

वेब जर्नलिज्म ने सिटिजन जर्नलिज्म को एक अच्छी दिशा प्रदान की है। ब्लॉग, वेबसाइट्स या सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से लोग अपनी स्टोरी कवरेज को अन्यों तक पहुंचाने में कामयाब हैं। हजारों लोगों ने किसी खास मुद्दे को लेकर अपनी बेवसाइट बनाई हुई हैं और खुद के साथ अन्यों को भी जोड़ा।

भारत के उत्तरी–पूर्वी राज्यों में आज भी मीडिया अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो सकी है, इसलिए वहां की जनता ने खुद ही संयुक्त योगदान से न्यूज कलेक्शन शुरू कर दिया। इसे आम लोगों के लिए खुला रखा गया है जिसमें अपने क्षेत्र की कोई भी खबर या स्टोरी को अपलोड किया जा सकता है।

अपनी बात को लोगों तक पहुंचाने के लिए एक सिटिजन जर्नलिस्ट को कई बुनियादी चीजों की जरूरत होती है। अपनी रिपोर्ट या स्टोरी को वे अपने हैंड कैमरा, फोन, इंटरनेट, या फिर वॉयस रिकॉर्डिंग के जरिये लोगों या कम्यूनिटीज के बीच पहुंचाते हैं। सिटिजन जर्नलिस्ट आज बिना किसी प्रोफेशनल ट्रेनिंग के ही अपनी बात एक बड़े स्तर पर प्रेषित कर सकते हैं, जिससे सूचना बिना किसी व्यय के और बिना समय लगाए एक बड़े पैमाने पर तुरंत पहुंच जाती है।

जहां एक ओर वेब परियोजनाओं में लोग अपनी रचनाओं, लेखों या विचारों को भेज उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं वहीं सोशल नेटवर्किंग साइटों में विचार रखने के साथ–साथ बहस का मंच बना रहे हैं। समाचार पत्र, खबरिया चैनल और वेबसाइट्स आदि सभी अपने साथ सिटिजन जर्नलिस्ट को भी आवश्यक स्थान देने लगे हैं। आज आम लोगों द्वारा अपने ब्लॉग पर किसी विशेष विषय पर किये गए लेखन को ब्लॉग से समाचार पत्रों में विशिष्ट कॉलम दिया जाने लगा है।

सिटिजन जर्नलिस्ट के तौर पर काम करते हुए कुछ नागरिकों ने देश के लिए एक मिसाल भी कायम की है। जिसे आज भी लोग सम्मान से देखते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण विजय लक्ष्मी को माना जा सकता है, जिसने लोकल ट्रेनों में महिलाओं के साथ होने वाली छेड़खानी से क्षुब्ध हो संबंधित विभागों में धक्के खाकर आखिर महिलाओं को अपना हक दिलवाया और एक महिला कोच की व्यवस्था करवाई।

ऐसी ही एक और कहानी शिव प्रकाश राय की भी रही, जिन्होंने अपने ऊपर लगे हेरा–फेरी के झूठे मामले के लिए कई साल तक लंबी लड़ाई लड़ी और घूस के असली आरोपियों (सरकारी अधिकारी) का चेहरा लोगों के सामने लाया।

आरटीआई ने आम जनता को एक बड़ा हथियार दिया है जिससे लोग अपनी आवश्यकतानुसार संबंधित विषय की जानकारी लेकर संबंधित विभाग की खामियों को आमजन से रूबरू करा देते हैं।

सिटिजन जर्नलिस्ट के इस बड़े योगदान को यहां तक पहुंचाने का भी श्रेय मीडिया को ही जाता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण आईबीएन–7 के रूप में देखा जा सकता है। राजदीप सरदेसाई ने जब इस चैनल की शुरूआत की तो चैनल की थीम सिटिजन जर्नलिस्ट ही रखकर लांच किया गया था।

भारत में सिटिजन जर्नलिज्म को अभी और विस्तार करने की जरूरत है। फिलहाल भारत में सिटिजन जर्नलिस्ट के रूप में भूमिका निभाने वाले जागरूक नागरिकों के पास अभी तक तकनीकी सुविधाओं की कमी है। समय के साथ–साथ इस दिशा में सुधार होना लाजमी है, तब ही भारत में एक विकसित सिटिजन जर्नलिज्म का होना संभव हो सकेगा। यदि सिटिजन जर्नलिज्म एक ओर सूचनाओं को प्रवाह देता है तो वहीं पारंपरिक मीडिया घरानों की तरह यहां भी इसका नकारात्मक पहलू सामने आ जाता है।

इसके नकारात्मक पहलू को 'पीपुलराज्जी' के नाम से जाना जाता है। समाज के प्रतिष्ठित लोगों से जुड़े तथ्यों को तोड़ मरोड़कर पेश करने वाले सिटिजन जर्नलिस्ट इस क्षेत्र में घुन का काम कर रहे हैं।

कुछ सालों पहले किसी व्यक्ति ने एक ऐसी वीडियो तैयार कर वेबसाइटों पर डाल चैनलों तक भी पहुंचाई थी जिसमें साईंबाबा की आंखों से आंसू निकल रहे थे। हालांकि इसे बाद में झूठी फुटेज साबित कर दिया गया था। इस वीडियो को देख लाखों भक्तों के भावनाओं को ठेस पहुंचा और वह उस मंदिर में पहुंच गए, जहां की घटना दिखाई जा रही थी।

लोग बेवजह नाम कमाने के लालच में आकर झूठे और अटपटे फुटेज बनाकर पेश कर देते हैं। जो समाज या किसी अन्य व्यक्ति के लिए मानहानि से जुड़ा मुद्दा बन जाता है। इसलिए सिटिजन जर्नलिस्ट के साथ सतर्कता भी बरतनी जरूरी हो जाती है।

गौर किया जाए तो लोकतंत्र के हनन और आम नागरिकों की उपेक्षा के जवाब में सिटिजन जर्नलिस्ट आगे आए हैं। फिर भी सतर्कता को कायम रखते हुए सच कहा जाए तो सिटिजन जर्नलिज्म एक वैकल्पिक मीडिया मंच ही है। ■

रंगीली होली और रसहीन मीडिया

जयप्रकाश सिंह

वैश्वीकरण की जीवनसंगिनी उपभोक्तावादी मानसिकता भारतीय मनीषा को यह कहकर पिछड़ा साबित करने की कोशिश करती रहती है कि यह रसहीन है। इसमें त्याग, तपस्या पर बहुत बल दिया जाता है और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों की संतुष्टि के लिए 'स्पेस' नहीं है। उपभोक्तावादी मानसिकता के इस आरोप को अंग्रेजीदां बुद्धिजीवी और मीडिया बड़े उत्साह के साथ स्वीकार करते हैं। इसी तर्क के आधार पर यह तबका वैलेन्टाईन डे, न्यू ईयर पार्टी जैसे आयोजनों को तर्कसंगत ठहराने की कोशिश करता है। इसके साथ ही भारतीय जीवनशैली और जीवनदर्शन को अप्रासंगिक साबित करने की भी कोशिश की जाती है। लोगों को यह भी बताया जाता है कि भारतीय जीवनशैली को अद्यतन तथा प्रासंगिक बनाए रखने के लिए उसमें पश्चिमी मूल्यों एवं त्योहारों का समावेश आवश्यक है, लेकिन क्या भारतीयता सचमुच रसहीन है या बुद्धिजीवियों एवं मीडिया की आंखों पर चढ़ा पश्चिमी चश्मा उनको भारतीय रस परम्परा का दर्शन ही नहीं करने देता। होली का त्यौहार इस आरोप का उत्तर देने में सक्षम है। यह त्यौहार भारतीय रस परम्परा से हमारा परिचय भी कराता है।

भारतीय मनीषियों ने ईश्वर की अनुभूति 'रसो वै सः' के रूप में की है। चरम अनुभूति को रसमय माना है। यही मनीषा ईश्वर को सच्चिदानंद भी कहती है। यानी भारतीय मानस के लिए ईश्वर और आनंद की अनुभूतियां अलग–अलग नहीं हैं। होली भारतीय चित द्वारा इसी रस की स्वीकृति और अभिव्यक्ति है। होली आधुनिक बुद्धिजीवियों की उस संकल्पना पर करारा वार करती है जिसके अनुसार परम्परागत भारतीय समाज आनंद की अनुभूति से विमुख है और इस समाज में आनंद की स्वीकृति व अभिव्यक्ति के लिए कोई 'स्पेस' नहीं है। पश्चिमी नजरिए में रचे–पगे इन बुद्धिजीवियों को होली की रंगीनमिजाजी आकर्षित नहीं करती। जिस समाज में प्राचीनकाल से ही कौमुदी महोत्सव मनाए जाने की परम्परा रही है, वह समाज रस और आनंद से विमुख कैसे हो सकता है। आज की विद्वतमण्डली यदि होली और कौमुदी महोत्सव को भूलकर वैलेन्टाइन डे को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जरूरी मानती है तो यह उसकी आत्मविस्मृति और आत्महीनता की स्थिति को ही दर्शाती है।

हां, यह बात जरूर है कि भारत ने आनंद की अपनी अलग परिभाषा गढ़ी और आनंद की अनुभूति के अपने तौर–तरीके भी विकसित किए। यह तरीके सामान्यबोध अथवा कॉमनसेंस पर आधारित हैं और सामाजिक चौखटों का भी इसमें ध्यान दिया जाता है। भारतीय लोकपरम्परा इस बात पर बल देती है कि 'चौकी' का काम 'चौके' पर

और 'चौके' का काम 'चौकी' पर नहीं करना चाहिए। यह सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की दृष्टि से आवश्यक है। सामाजिक स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए 'रसास्वादन' करना भारत की एक प्रमुख विशेषता है। पश्चिमी देश आज भी आनंद की अनुभूति के संदर्भ में व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा संतुलन नहीं स्थापित कर सके हैं। इसीलिए अपनी आंख पर पश्चिमी चश्मा लगाए लोगों को यह बात असम्भव लगती है कि परिवार और समाज के दायरे में रहकर भी आनंद लिया जा सकता है।

बुद्धिजीवियों के इस वर्ग की मानसिकता को समझने के लिए अंग्रेजी मीडिया को केस स्टडी के रूप में लिया जा सकता है। अंग्रेजी मीडिया में अंग्रेजीदां मानसिकता के लोग ही हावी हैं। इसीलिए अंग्रेजी मीडिया में कभी भी होली के त्यौहार को आनंद के त्यौहार के रूप में नहीं परोसा जाता। कुछ रंग बिरंग समाचार और चित्र जरूर चिपका दिए जाते हैं। होली का त्यौहार अपने में आनंद का दर्शन समाहित किए हुए है। इस दर्शन को भारतीय संदर्भों में पहचानने और व्याख्यायित करने की कोशिश अंग्रेजी मीडिया कभी नहीं करती। बसंत क्या है, इस मौसम में आम जनमानस क्यों उल्लसित होता है, उसकी बसंत ऋतु को लेकर क्या अवधारणाएं और परंपराएं हैं, इन बातों से अंग्रेजी मीडिया का कुछ भी लेना देना नहीं होता।

पढ़े लिखे लोग भी होली के उत्साह को भांप नहीं पाते या भांपकर भी इस लोक उत्साह को पिछड़े एवं गंवारु लोगों के मन की अनगढ़ अभिव्यक्ति मान लेते हैं। वस्तुतः ऐसा नहीं है। होली सुसंस्कृत मन की अनगढ़ अभिव्यक्ति है। भारतीय लोक परम्परा के अद्वितीय अन्वेषक विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय लोकमानस का अवधूत भगवान शिव का प्रतिबिम्ब माना है। भगवान शिव का बाहरी रूप अनगढ़ है। गले में सांप है। पूरे तन भस्म से लिपटा हुआ है। भूत–बैताल उनके सभासद है। बाहर से वह बहुत भयावह हैं, लेकिन अंतःकरण विषपायी है। भगवान शिव साक्षात योगी वर हैं और आशुतोष हैं। जल्दी से प्रसन्न होकर किसी को कोई भी वरदान दे सकते हैं। इसी तरह भारतीय मन बाहर से देखने में तो अनगढ़ लगता है, लेकिन अंदर से वह सभ्य है। होली इसी भारतीय मन का एक त्यौहार के रूप में पूर्ण प्रकटीकरण है।

होली उसी भारतीय लोकमानस की अभिव्यक्ति है जो अब भी परम्परा को सींच रहा है और उससे रस भी ले रहा है। होली के मन को समझने के लिए गांव का मन समझना जरूरी है। होली वास्तव में गंवई मन की ही अभिव्यक्ति है। गांव में आज भी किसी एक व्यक्ति के बीमार पड़ने पर सभी ग्रामीण हाल–चाल पूछने जाते हैं। किसी झोपड़ी में आग लगने पर पूरे गांव के लोग अपने बर्तन लेकर आग बुझाने को चल देते हैं। यह गंवई मन दमकल विभाग को फोन कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ लेता। होली उस सामूहिक मन की अभिव्यक्ति है जो आज भी बसंत के आगमन पर बसंत और विरह के गीत गाता है। होली उन होलियारों के मन की अभिव्यक्ति है जो आज भी गांव के हर घर के सामने जाकर 'कबीरा सररर' कहता है। गांव की भाभियों से होली खेलने के लिए मान–मनौव्वल भी करता है और घंटो धरना प्रदर्शन भी। यह टोली तभी आगे बढ़ती है जब घर की नई–नवेली बहू के साथ होली खेलने का मौका मिल जाए।

इन होलिहारों के होली खेलने के तरीके को आप अनगढ़ कह सकते हैं। ये केवल आपको रंग 'लगाएंगे' नहीं। रंगों से आपको 'रगड़ेंगे' और रंगों से सराबोर कर देंगे। कभी–कभी तो दस बीस होलिहारे आपको 'पटक' कर रंग लगाएंगे। इतना सब कुछ होने के बाद आपको गोद में उठाकर हवा में भी लहराएंगे और भावातिरेक में गले भी मिलेंगे। इसके बाद दिन के दूसरे पहर यही होलिहारे आपको प्रसिद्ध लोक कवि शारदा प्रसार सिंह की पंक्तियां 'नियरान बसंत कंत न पठए पतिया' गाते हुए मिल जाएंगे।

इस गंवई सभ्य मन के आनंद को आज का तथाकथित सभ्य समाज कैसे समझ सकता है जो शाम को किसी से काम निकालने के लिए सुबह नमस्ते करता है। इस समाज में 'जैरमी' भी बिना कारण नहीं होती। वैसे गंवई मन के इस होली भाव को आप क्या कहेंगे। सभ्य या असभ्य। अंग्रेजी मीडिया तो इसे असभ्य घोषित कर चुका है। यह सभी भावनाओं और आयोजनों के वस्तुकरण को ही सभ्यता और रंगीनमिजाजी का पर्याय मानती है। शायद इसीलिए उसकी नजर में सभ्यता और रसास्वादन की निशानी मात्र वैलेन्टाईन डे के दिन उपहारों के आदान–प्रदान और ईसाई नववर्ष के दिन शराब पीकर हुड़दंग मचाने में ही है। ■

पत्रकारिता पवित्र सेवा कार्य है– दशरथ प्रसाद द्विवेदी

सूर्यप्रकाश

हिंदी पत्रकारिता ने अपने प्रारंभिक काल से ही विभिन्न परिवर्तनों और आंदोलनों में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया है। राष्ट्रवाद को यदि पत्रकारिता का प्राणतत्व भी कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समाज के हर व्यक्ति के हृदय को स्वदेश प्रेम के भाव से परिपूर्ण करने का कार्य हिंदी पत्रकारिता ने अपने उद्‌भव काल से ही किया है। इसी प्रखर राष्ट्र भाव को जन–जन में जागृत करने का कार्य दशरथ प्रसाद द्विवेदी जी ने साप्ताहिक पत्र स्वदेश के माध्यम से किया था। द्विवेदी जी ने अपने पत्र 'स्वदेश' के माध्यम से लोगों का जागरण किया। उनके पत्र 'स्वदेश' के प्रथम पृष्ठ पर ही स्वराष्ट्र धर्म की भावना को जागृत करने वाली निम्नलिखित पंक्तियां लिखी रहती थीं–

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।''

'स्वदेश' में संपादकीय टिप्पणी के ऊपर कलात्मक ढंग से लिखा रहता था–

''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि''

दशरथ जी थानेदारी की नौकरी छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में आए थे। गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में उनके सहायक भी रहे थे, दशरथ जी। वहीं उन्होंने 'स्वदेशी भाव का पाठ पढ़ा था, जिसके लिए वे जीवन–पर्यंत समर्पण भाव से कार्य करते रहें।

दशरथ प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता का मूल स्वर राष्ट्रवाद ही था, शायद गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे प्रखर पत्रकार के सहयोगी होने का भी यह प्रभाव रहा हो।

पं. दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने पत्रकारिता के कार्य को एक सेवाकार्य मानते हुए अपना कार्य किया और आने वाली पत्रकार पीढ़ी को भी यही संदेश दिया। पत्रकारिता के क्षेत्र को समाज सेवा का माध्यम बताते हुए उन्होंने लिखा था–

''अखबारनवीसी अथवा पत्रकार जीवन भला है या बुरा? इस प्रश्न का कोई दो टूक उत्तर नहीं दिया जा सकता। किंतु किसी को अपना जीवन दिव्य और उपयोगी बनाना है तो यह एक पवित्र सेवा है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।'' (स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता और दशरथ प्रसाद द्विवेदी– डा. अर्जुन तिवारी)

ऐसे समय में जब पत्रकारिता के क्षेत्र में आने वाले लोग ग्लैमर जानकर पत्रकारिता के क्षेत्र में आते हैं, तब दशरथ जी की निम्न पंक्तियां समीचीन जान पड़ती हैं–

''हिंदी पत्रकारिता की नींव ही कुछ ऐसी पड़ी है कि अपना उल्लू सीधा करने वालों की इसमें गुंजाइश ही बहुत कम है। शुद्ध सेवा–भाव को लेकर त्याग एवं तप का जीवन बिताने वाले लोग ही अब तक हिंदी अखबारनवीसी में पनपे हैं।'' (स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता और दशरथ प्रसाद द्विवेदी– डा. अर्जुन तिवारी)

दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने पत्रकारिता को एक मिशन मानते हुए कार्य किया। पत्र चलाने के लिए विभिन्न आर्थिक आवश्यकताओं की अधिक परवाह न करते हुए उन्होंने विज्ञापनों के बिना ही 'स्वदेश' को लंबे समय तक सफलतापूर्वक चलाया। यद्यपि वे हिंदी समाचार पत्रों के प्रति सदैव चिंतित भी रहें। हिंदी पत्रों के दर्द को बयां करते हुए उन्होंने लिखा था–

''हिंदी समाचार पत्रों का कोई पुरसाहाल (हाल पूछने वाला) नहीं। हम जानते हैं, अंग्रेजी पत्र अखबारी संसार में बढ़े–चढ़े हैं, उनकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा है, अपने क्षेत्र में उनकी अच्छी पैठ है, वे काम भी अच्छा करते हैं, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि देशी भाषाओं में निकलने वाले अपने अन्य सहयोगियों को इस प्रकार उपेक्षा की दृष्टि से देखें।'' (स्वदेश, 23/06/1919)

वर्तमान समय में पत्रकारिता पर भी निगरानी की बात जोरों पर है। ऐसे समय में दशरथ जी की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

''हमारी समझ से तो हिंदी प्रेस एसोसिएशन को अभी दो काम हाथ में लेना चाहिए। एक तो यह कि हिंदी के प्रत्येक पत्र पर अपना नियंत्रण रखे और इस बात का प्रयत्न हो कि कोई भी पत्र–पत्रिका बहकी हुई बातें न लिखे।'' (स्वदेश, 30/06/1919)

पत्रकारिता के क्षेत्र में बढ़ते व्यावसायिक दबावों के कारण अक्सर समाचार पत्रों को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। यह पत्रकारिता के लिए शुभ संकेत नहीं कहा जा सकता है। पं. दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने समाचार पत्रों की आर्थिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में लिखा था–

''प्रेस एसोसिएशन को खास तौर पर यह कार्य करना चाहिए कि वह हिंदी पत्रों और प्रेसों का अधिकांश भार अपने ऊपर ले। समय कुसमय वह उनकी मदद करे। हिंदी जनता को अखबारों के पढ़ने की ओर झुकाकर वह अपना कोष भरे।'' (स्वदेश, 30/06/1919)

दशरथ जी ने पत्रकारिता में अपना योगदान अपने लेखन के माध्यम से ही नहीं बल्कि पत्रकारिता के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़कर भी दिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा सन 1910 में लागू किए गए प्रेस एक्ट का मुखर विरोध करने वालों में दशरथ जी का प्रमुखता से नाम लिया जा सकता है। प्रेस एक्ट का विरोध करने के लिए उन्होंने तत्कालीन समाचार पत्रों से एकजुट होने का आह्वान किया और प्रेस एसोसिएशन के गठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

दशरथ जी ने विपरीत परिस्थितियों में हिंदी प्रेस एसोसिएशन के गठन के माध्यम से समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं को बल प्रदान किया। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा था–

''हिंदी प्रेस एसोसिएशन के संगठन में इस बात का ध्यान देना चाहिए कि आगे चलकर, वह भी अपने अधीनस्थ प्रेसों व पत्रों को जोरदार बना सके।''

दशरथ जी ने 'स्वदेश' के माध्यम से जन–जन तक तिलक और गांधी के विचारों को प्रसारित किया। स्वदेश की लोकप्रियता का ही परिणाम था कि प्रेमचन्द, सोहनलाल द्विवेदी, अयोध्या सिंह हरिऔध और मैथीलीशरण गुप्त जैसे विभिन्न महान साहित्यकारों ने स्वदेश को अपना सहयोग दिया।

ऐसे समय में जब साहित्यिक पत्रों एवं पत्रिकाओं की संख्या में कमी आई है तथा साहित्य और पत्रकारिता के बीच दूरी बढ़ी है, तब दशरथ प्रसाद द्विवेदी जैसे योद्धा पत्रकार के प्रेरक विचार वर्तमान पत्रकार पीढ़ी के लिए अनुकरणीय जान पड़ते हैं। ■

सूचना का माध्यम 'पश्चिमी गेटकीपर्स' – विजय क्रान्ति

भारतीय पत्रकारिता में समय–समय पर व्यापक परिवर्तन आए हैं जिनमें कुछ सकारात्मक भी हैं तो कुछ नकारात्मक भी। इसके साथ ही डिजिटलाइजेशन के कारण आज मीडिया की सूरत ही बदल चुकी है। पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं पर वरिष्ठ पत्रकार विजय क्रान्ति से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कैसे हुआ?

मै किरोड़ीमल कॉलेज में विज्ञान का छात्र था। मेरी लिखने में काफी रूचि थी। कॉलेज की साहित्यिक पत्रिकाओं व अन्य पत्रिकाओं में मैं लिखा करता था। कॉलेज की पत्रिका ने पहले मेरी लिखने में रूचि बढ़ाई और फिर मुझे महसूस हुआ कि मैं पत्रकार भी बन सकता हूं। उस दौर में लिखने की शैली विकसित करने का जो मौका मिला वो बहुत मजेदार था और कॉलेज खत्म होते ही मैंने निर्णय लिया कि मुझे पत्रकार बनना चाहिए।

पत्रकारिता के दौरान आपके कुछ रोचक अनुभव?

एक बार मेरी पिटाई हुई थी जो अभी तक याद है। एक बार एक स्टोरी के लिए मैं अजमेर गया था। उन्हीं दिनों वहां एक और स्टोरी मिल गई। वहां एक बहुत बड़े सैक्स रैकेट का खुलासा हुआ था, जिसमें एक राजनीतिक दल का नेता भी शामिल था। उसकी अदालत में पेशी के दिन हम यह स्टोरी कवर करने के लिए पहुंच गए। पेशी के लिए वह गाड़ी में आने ही वाला था कि यूथ कांग्रेस के नेताओं ने घोषणा कर दी कि ''कोई भी अखबार वाला उसकी फोटो नहीं खीचेगा और जो खीचेगा उसके हाथ पैर तोड़ देंगे।'' मैं आगे बढ़ा और कहा कि ''जो करना है कर लो, हम अपना काम करके रहेंगे।'' जो ही मैंने कैमरा उठाया तो किसी ने मेरी गर्दन पकड़ ली, किसी ने सिर पर मारा। अगले दिन अखबार में खबर छप गई कि दिल्ली के पत्रकार पिट गए और मेरा नाम भी छप गया। इस प्रकार मेरे घर के लोगों को पता चला तो वह परेशान हो गए, फिर बाद में मैंने सूचना दी कि मैं ठीक हूं। इस तरह की घटना पत्रकारिता में आम है। उस समय तो बड़ा बुरा लगता है लेकिन बाद में सुनने सुनाने में काफी मजा आता है। एक और बड़ी रोचक घटना थी। जब 1992 में भारत सरकार और चीन सरकार ने भारत–तिब्बत सीमा, बॉर्डर ट्रेड के लिए दोबारा खोली तो हमारी टीम को वहां स्टोरी के लिए जाना था। मेरे सहयोगी पत्रकारों ने वहां जाने से मना कर दिया क्योंकि उन्हें पता चला कि एक दिन के लिए पैदल चलना पड़ेगा। चूंकि तिब्बत में मेरी रूचि थी तो मैंने जाने का निर्णय लिया और पता चला कि एक दिन नहीं बल्कि छह दिन पैदल चलना पड़ेगा। मैं धरसुड़ा से लेकर ठाणीदार, बॉर्डर कुंजी होते हुए लिपुलेन तक पैदल गया। इस बीच जिस खच्चर पर मैंने अपना बैग रखा था वो खो गया। तो 5 दिन तक बिना कपड़े बदले मैं पैदल चला। हालत ये थी कि कपड़ों में बदबू आने लगी थी, फिर भी रोज पैदल चलना था। खाने को कुछ मिल नहीं रहा था। सोने के लिए जगह मिली जहां खच्चर सोते हैं। बीच में केवल ढाई फीट की दीवार थी जिसके एक तरफ खच्चर सो रहा था और एक तरफ मैं। बीच–बीच में जब उसकी दुम लगती थी तो नींद खुल जाती थी। 5–6 दिन बाद वो खच्चर मिला जिस पर मेरा बैग था और फिर मैंने कपड़े बदले।

वर्तमान पत्रकारिता के दौर में आप क्या बदलाव देखते हैं?

पत्रकारिता में मैं 1970–71 में आया था। तब से लेकर अब तक पत्रकारिता में बहुत बदलाव आए हैं जिनमें कुछ अच्छे हैं तो कुछ दुर्भाग्यपूर्ण भी हैं। सकारात्मक बदलाव की बात करें तो आज पत्रकारिता के प्रशिक्षण केन्द्रों में बढ़ोतरी हुई है जिसके कारण विद्यार्थियों को अच्छा प्रशिक्षण मिल रहा है। जबकि हमारे समय में पत्रकारिता के बहुत ज्यादा प्रशिक्षण केन्द्र नहीं थे। इसके साथ ही मुद्रण तकनीक में भी डिजिटिलाइजेशन के कारण अखबारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। पहले हिन्दी अखबारों के एक या दो संस्करण आते थे और आज एक ही अखबार के 18–19 संस्करण आते हैं जिसके कारण पत्रकारों के लिए रोजगार के अवसर बढ़े हैं। समाचार पत्रों के प्रसारण में भी वृद्धि हुई है। दूसरी ओर नकारात्मक बदलाव यह है कि मीडिया का दुरूपयोग करने के लिए पश्चिमी हितों की जो घुसपैठ है उनके लिए संभावनाएं काफी बढ़ गई हैं। मीडिया में यह बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। मीडिया में आज जो कुछ भी आ रहा है उसमें से कई सामग्रियां ऐसी होती हैं जिनको आम जन के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। आज यह मीडिया के लिए चुनौती बन गया है।

प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में से कौन पत्रकारीय मूल्यों को बेहतर तरीके से निभा पा रहा है?

मेरा मानना है कि अन्तर प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर है। अच्छे और समझदार पत्रकार, चाहे वह प्रिंट में हो या इलेक्ट्रॉनिक में अपना काम बखूबी निभा रहे हैं, लेकिन कुछ पत्रकार मीडिया का दुरूपयोग भी कर रहे हैं। अभी हाल ही में राडिया केस हुआ तो टेप हर जगह पहुंची। पता चला कि अखबारों के संपादक मीडिया की एजेंट से डिक्टेशन लेकर लिख रहे हैं। उस समय एक अखबार का संपादक राडिया से डिक्टेशन लेकर अपना लेख लिख रहा था जो बड़ी शर्मनाक बात है, लेकिन तकनीक में विस्तार होने के कारण ही ऐसे लोगों पर से पर्दा उठने लगा है, जो अच्छा है। इस प्रकार मीडिया में यह परिवर्तन थोड़ा शर्मनाक है, किन्तु रोचक है।

फोटो पत्रकारिता में आप क्या बदलाव देखते हैं?

फोटो पत्रकारिता आज बहुत गतिशील हो गई है, खासतौर से डिजिटिलाइजेशन के बाद। पहले किसी खबर से संबंधित फोटो छपने में

काफी समय लग जाता था। अगर खबर सुदूर क्षेत्र की है तो फोटो फिल्म को कार्यालय भेजने और उसका प्रिंट प्राप्त करने में 2–3 दिन का समय लग जाता था, लेकिन आज फोटो डिजिटल होने के कारण ईमेल से तुरन्त भेज दी जाती है। इसने एक ओर तो फोटो पत्रकार की चुनौतियों को बढ़ा दिया है, तो वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र में संभावनाओं की भी बढ़ोतरी हुई है।

आपकी सबसे यादगार फोटो प्रदर्शनी कौन सी है?

मुंबई स्थिति यूनिवर्सिटी फॉर वुमन में 'तिब्बतन वुमन एसोसिएशन' ने एक फेस्टिवल आयोजित किया था जिसमें मैंने भी एक फोटो प्रदर्शनी लगाई थी। उसमें मैंने निर्वासन में रह रही तिब्बती महिलाओं को प्रदर्शित किया था। प्रदर्शनी के चौथे दिन चीनी दूतावास से एक जनरल आए और एक फोटो को देखकर भड़कते हुए उन्होंने उसे हटाने को कहा। उन्होंने कॉलेज की वाइस चांसलर पर दबाव बनाकर वो फोटो हटवा दी। उस फोटो का कसूर यह था कि उसमें संयुक्त राष्ट्र के सामने दो तिब्बती महिलाएं बैठी हुई आंख बंद कर एवं हाथ जोड़कर शांतिपूर्ण ढंग से आजादी की मांग कर रही थीं। उनमें से एक के हाथ में प्लैकर्ड था जिस पर लिखा था 'चाइना क्विट तिब्बत'। वह जनरल उस फोटो को देख भड़क कर बोल रहे थे 'वाई शुड चाइना क्विट तिब्बत, तिब्बत इज ए पार्ट ऑफ चाइना, हू इज दिस बास्टर्ड फोटोग्राफर'। इससे यह हुआ कि चार दिन यह प्रदर्शनी चली और यह फोटो दुनियाभर में प्रख्यात हो गई। इस फोटो से मैं काफी प्रभावित था क्योंकि इसमें अपने देश पर कब्जा होने के बाद भी दो महिलाएं आंखें बंद करके शांतिपूर्ण ढंग से प्रार्थना कर रही थीं। इसीलिए मैं यह फोटो अपनी प्रदर्शनी में पहली या आखिरी फोटो के तौर पर प्रदर्शित करता हूं।

तिब्बती मामले को लेकर मुख्य धारा की मीडिया का क्या रूख है?

मुख्य धारा का मीडिया वैसे तो सहानुभूति रखता है, लेकिन यह भी सच है कि तिब्बत को पूरी दुनिया की मीडिया में जितना स्थान मिला है उतना भारतीय मीडिया में नहीं मिला। भारत और तिब्बत के हित कितने समान है, इसको लेकर भारतीय मीडिया उदासीन है। जितने भरोसे से जागरूक मीडिया को बोलना चाहिए वह भारतीय मीडिया नहीं बोल पा रहा है। मेरे विचार से भारतीय मीडिया को तिब्बती मामले को अपने प्राथमिक मामलों में शामिल करना चाहिए क्योंकि कई काम जो सरकार नहीं कर सकती, वो मीडिया और जनता कर सकती है।

वर्तमान समय में भारतीय मीडिया में अन्तर्राष्ट्रीय कवरेज से क्या आप संतुष्ट हैं?

भारत में अंतर्राष्ट्रीय खबरें आज भी दुर्भाग्य से सूचना के पश्चिमी 'गेटकीपर्स' कही जाने वाली चार बड़ी एजेन्सियों से ही प्राप्त हो रही हैं। इसके कारण जो भी मुद्दें पश्चिम के हित में हैं, वो दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए उन्हें इराक व ईरान के मुद्दें बड़े लगते हैं जबकि हमारे लिए यह मुद्दें बड़े नहीं है, लेकिन भारतीय मीडिया फिर भी इसे दिखाता रहता है क्योंकि दुनियाभर की खबरें यही एजेन्सियां नियंत्रित करती हैं। इस प्रकार भारतीय मीडिया उनके लिए एक उपकरण बनकर रह जाता है। ऐसी स्थिति में भारतीय अखबारों व एजेन्सियों को भी अपने ब्यूरो दुनियाभर में फैलाने चाहिए जिससे भारतीय नजरिए से अंतर्राष्ट्रीय खबरें देश में आए।

आज आम आदमी की नजरों से मीडिया का जो महत्व घटा है उसके लिए क्या किया जाना चाहिए?

पिछले कुछ समय में मीडिया में काफी शर्मनाक मामलें सामने आए हैं। मीडिया का आज जो महत्व घटा है उसके पीछे मीडिया की ही गलती है। आज कई महत्वपूर्ण मुद्दें व बड़ी खबरें मीडिया में गौण होकर रह जाती हैं जबकि सनसनी के कारण बचकानी खबरें सामने आती हैं। आज मीडिया की प्राथमिकताएं खिसक गई हैं और यह तब तक खिसकती रहेगी जब तक मीडिया सनसनी पैदा करने वाली खबरें बनाता रहेगा। ऐसी हालत में मीडिया अपना बचाव नहीं कर पाएगा। इसीलिए मीडिया को अपनी प्राथमिकताओं में सुधार करना चाहिए तभी उसे सम्मान भी मिलेगा।

वर्तमान समय में मीडियाकर्मियों को किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है?

मीडिया पर आज कई तरह का दबाव है जो बाहरी भी है और भीतरी भी। बाहरी दबाव यह है कि आज जितने भी राजनीतिक दल, कार्पोरेट्स या मीडिया में हित रखने वाले अन्य दल हैं, वह मीडिया का अपने ढंग से प्रयोग करना चाहते हैं और उनके पास इसके लिए संसाधन भी है जिसके कारण वह दबाव बना सकते हैं। इसके अलावा आंतरिक दबाव मीडिया मालिकों का है। मीडिया का विस्तार इतना ज्यादा हुआ है कि आज मीडिया का स्वामित्व गंभीर लोगों के हाथों में नहीं है। एक समय था जब टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स समेत बाकी सब अखबारों का स्वामित्व इज्जतदार व गंभीर लोगों के हाथों में था लेकिन आज प्रोपर्टी डीलर्स व माफियाओं ने अपने चैनल खोल रखे हैं। इस प्रकार जिन मूल्यों के कारण वह अमीर बने हैं उन्हें वह चैनल में भी लेकर आते हैं। एक और ध्यान देने वाली बात है कि जिस तरह से व्यवस्था बदल रही है उसके अनुसार मीडिया का ट्रेड यूनियन बहुत कमजोर हुआ है। ट्रेड यूनियन केवल वेतन बढ़ाने या घटाने के लिए ही नहीं बल्कि मीडिया पर एक नैतिक दबाव भी बनाए रखता था। इस प्रकार मीडियाकर्मियों को नैतिक मूल्य बनाए रखने, आंतरिक व बाहरी दबावों को झेलने के लिए ट्रेड यूनियन का जो समर्थन था, वह खत्म हो गया है। एक परिवर्तन प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण भी हुआ है। आज टीआरपी के फेर में सेंसेशनलिज्म हावी हो रहा है जिसके कारण इस तरह की सोच रखने वाले पत्रकार मालिकों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण हो रहे हैं। यह सब आज पत्रकारिता में दुर्भाग्यपूर्ण है।

मीडिया में आने वाले नवागंतुकों को आप क्या संदेश देना चाहते हैं?

मीडिया में जो नए लोग आ रहे हैं उनके लिए सलाह है कि वह ग्लैमर को देखकर मीडिया में न आए। मीडिया की जो जिम्मेदारियां हैं, खतरें हैं, तनाव हैं, उन सबको झेलने की क्षमता उनके अंदर हो और इन सबकों झेलते हुए भी वह जिम्मेदारी से अपना काम निभा सकें। यह एक चुनौती है। मीडिया में अच्छा काम करने वालों के लिए संभावनाएं बहुत है लेकिन आपमें सम्मान, समझदारी व जिम्मेदारी के साथ खड़े रहने की कितनी ताकत है, यह तय करेगी कि आप कितने सफल होंगे।

(प्रस्तुति : नेहा जैन)

मतवाला पत्रकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिंदी साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में अमिट हस्ताक्षर के समान हैं। अपने नाम के अनुरूप वे निराले ही थे। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला मूलतः छायावादी कवि थे, उनका जीवन भी कविता के समान ही था। उनके कवि जीवन के आगे कई बार उनके पत्रकार होने का परिचय सामने नहीं आ पाता है, जिसका अवलोकन करने का हमने प्रयास किया है।

महाकवि और महामानव जैसे उपनामों से सम्मानित निराला का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर में हुआ था। निराला जी की जन्मतिथि के विषय में मतैक्य नहीं है, परंतु वे अपना जन्मदिन बसंत पंचमी को ही मनाते थे। निराला का साहित्य ही नहीं साहित्यिक पत्रकारिता में भी महत्वपूर्ण योगदान था। भारतेंदु हरिशचंद्र के माध्यम से शुरू की गई साहित्यिक पत्रकारिता की विरासत महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद निराला जी को ही मिली थी। निराला ने सा. हित्यिक पत्रकारिता की शुरूआत ऐसे समय में की थी जब राजनीतिक पत्रकारिता के समकक्ष साहित्यिक पत्रकारिता ने भी अपना स्थान बना लिया था।

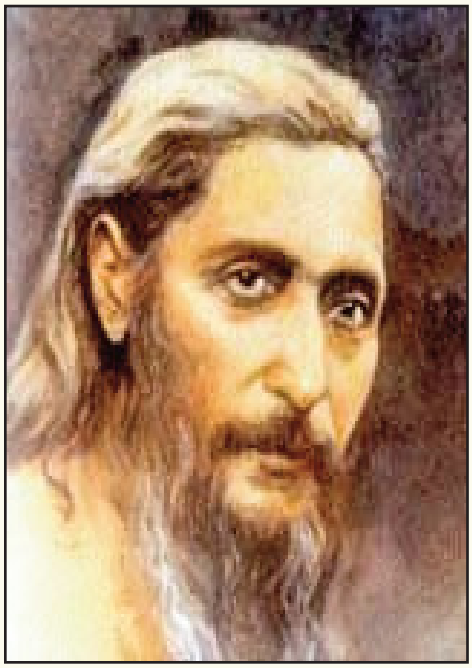

महामानव निराला का संबंध प्रमुख रूप से प्रभा, सरस्वती, माधुरी, आदर्श, शिक्षा और मतवाला जैसे प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं से रहा। मतवाला से उनका विशेष लगाव रहा था। 23 अगस्त, 1923 को जब मतवाला निकला, तो उस पर छपा मोटो निराला ने ही तैयार किया था। वह मोटो इस प्रकार था–

अमिय–गरल, शशि–शीकर, रवि–कर, राग–विराग भरा प्याला
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।

मतवाला के पहले अंक में ही रक्षाबंधन पर उनकी कविता छपी थी। इसके बाद तो निराला जी की कविता तो मतवाला की पहचान ही बन गई थी। वे मतवाला में गर्जन सिंह वर्मा, मतवाले, जनाबआलि, शौहर आदि नामों से लिखते थे। निराला भी उनका छद्म नाम ही था। जो आगे चलकर उनका उपनाम ही बन गया। इसका कारण यह था कि पत्र–पत्रिकाओं के छपने जाने से पूर्व कई बार लेखकों की रचनाएं नहीं मिल पाती थी और संपादक ही अपनी रचनाओं को छद्म नाम से प्रकाशित किया करते थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति चेतना का भाव हुआ करता था।

निराला गांधीवादी युग के साहित्यिक पत्रकार थे। वे गांधी जी के स्वदेशी आंदोलन और चरखा नीति के समर्थक थे। निराला अपनी बात को निराले ही ढंग से रखते थे। एक बार उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकलने वाली सरस्वती पत्रिका की आलोचना की तो द्विवेदी जी ने मतवाला को पूर्णतया संशोधित करके निराला के पास भेज दिया। निराला ने अपने समय के प्रतिष्ठित पत्र समन्वय में भी अपना योगदान दिया। समन्वय में उनके द्वारा अनूदित रामकृष्ण परमहंस की बांग्ला जीवनी का हिंदी अनुवाद छपा करता था। इसमें निराला अपना नाम एक दार्शनिक देते थे।

महामानव निराला ने अपनी कविताओं के माध्यम से आर्थिक विपन्नता को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया था। जिसका उदाहरण है उनकी यह कविता–

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।
भूख से सूख ओठ जब जाते
छाता–भाग्य विधाता से क्या पाते?

निराला जी की रचनाओं में उनके जीवन का दर्द सुनाई देता था। अपनी पुत्री की मृत्यु ने निराला को झकझोर दिया था। उस महामानव ने बेटी की विकलता में निम्न पंक्तियों को लिखा था, जिसे विभिन्न लेखकों ने सर्वश्रेष्ठ शोक गीत की संज्ञा दी है–

मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
छुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हो भ्रष्ट शीत के–से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

निराला ने सदा ही फक्कड़ जीवन जिया, कष्टों को वे निराले ही ढंग से सह लिया करते थे। अपने से ज्यादा औरों के कष्टों से उनको पीड़ा हुआ करती थी। यही उनका स्वभाव था। उनका संपूर्ण जीवन दुखों और कष्टों में ही बीता। यही कारण था कि अपने अंतिम समय में वे आध्यात्मिक हो गए थे। वे तुलसीदास के प्रशंसक थे, शायद रामचरितमानस से ही उनको कष्टों को गले लगाने की प्रेरणा मिलती थी। निराला जीवन पर्यंत हिंदी की सेवा में संलग्न रहे। महामानव निराला ने 15 अक्टूबर, 1961 को अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने निराला की मृत्यु के पश्चात उनके संघर्षमय जीवन के बारे में 'हिंदी टाइम्स' में लिखा था–

''राष्ट्रपिता बापू की मृत्यु के बाद मौलाना आजाद ने अपने एक भाषण में कहा था कि कहीं बापू के खून के छींटे हमारे ही हाथों पर तो नहीं! यही प्रश्न निराला जी के संबंध में हम लोगों के मन में भी उत्पन्न होता है।''

राष्ट्रकवि दिनकर की यह पंक्तियां निराला जैसे महामानव के संघर्षपूर्ण साहित्यिक जीवन को बयां करती हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का साहित्यिक और पत्रकार जीवन वर्तमान समय के पत्रकारों को पत्रकारिता के क्षेत्र में एक साधक के रूप में कार्य करने की प्रेरणा देता है। ■

मानवाधिकार का समर्थन या हनन

लोकतंत्र में मानवाधिकार का संरक्षण महत्वपूर्ण है। इन्हें सुनिश्चित करने की जवाबदेही यद्यपि उसके तीनों खम्बों की है लेकिन चौथे खम्बे के रूप में मीडिया को भी मानवाधिकार के संरक्षक की भूमिका में माना जाता है, लेकिन आज आरोप लगते हैं कि मीडिया तटस्थ व्यवहार न कर अनेक बार स्वयं पक्ष के रूप में सामने आता है। कुछ परिस्थितियों में मीडिया आतंकियों अथवा अपराधियों को बचाने का प्रयास करते हुए भी दिखता है। राष्ट्रीय हितों से परे मानवाधिकार के नाम पर मीडिया राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का मोहरा बन कर बाहरी तत्वों को लाभ पहुंचा रहा है। इन परिस्थितियों में उसे लोकनिन्दा का सामना करना पड़ता है। यह भी लगता है कि उसे इस लोकनिन्दा की भी परवाह नहीं है। विदेशी अथवा अंतर्राष्ट्रीय दबाव के बावजूद मीडिया से राष्ट्रीय व समाज हित को ध्यान में रखते हुए रिपोर्टिंग की अपेक्षा की जाती है। क्या आपको लगता है कि भारत का मीडिया तटस्थ रिपोर्टिंग कर पा रहा है? क्या वह अपनी भूमिका के प्रति तत्पर और जवाबदेह है?

राष्ट्रीय हित सरहद–सापेक्ष होता है, जबकि मानवाधिकार सरहदों से परे। हालांकि भारतीय मीडिया मानवाधिकार को भी बांट कर खबरों की पहचान करता है। विदेशी नागरिक या आतंकी का मानवाधिकार उनके लिए खबर है, परंतु जटिल न्यायिक प्रक्रिया के कारण जेलों में बंद हजारों विचाराधीन कैदी खबर से महरूम रह जाते हैं। मानवाधिकार से जुड़े मुद्दे की रिपोर्टिंग सबसे तेज के आधार पर नहीं की जा सकती। यह खोजी पत्रकारिता के तहत आता है और दुर्भाग्यवश खबरों की सनसनी में मानवाधिकार का हनन हो या न हो, राष्ट्र व समाज का अहित हो जाता है। जहां तक तटस्थ रिपोर्टिंग की बात है, तो खबरों की रेलम–पेल में भारतीय मीडिया इसमें थोड़ा पिछड़ता नजर आ रहा है।

चंदन कुमार, जागरण जोश.कॉम

मानवाधिकारों के संबंध में आज पत्रकारों को ज्यादा जानकारी नहीं हैं। वर्तमान समय में मानवाधिकारों से संबंधित रिपोर्टिंग न के बराबर होती है। मीडिया मैनेजमेंट ज्यादातर अमीर और मध्यम वर्ग के लोगों से संबंधित खबरों का प्रसारण करता है और निम्न वर्ग की उपेक्षा करता है, क्योंकि कोई भी गरीब 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' जैसे अंग्रेजी अखबारों को नहीं पढ़ता। कभी कभी पत्रकार ब्रेकिंग न्यूज की हड़बड़ी के कारण पूरी जांच किए बिना ही खबरों को छाप देते हैं, जिससे मानवाधिकारों के उल्लंघन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पत्रकारों की इस कमी को दूर करने के लिए मानवाधिकार संबंधित प्रशिक्षण दिए जाने की जरूरत है जिससे उनमें मानवाधिकार के प्रति जागरूकता आए और वह सकारात्मक एवं संतुलित दृष्टिकोण अपना सकें।

श्रीपाल जैन, पंचायत संदेश

अगर हम मानवाधिकार की बात करें तो इलैक्ट्रॉनिक और प्रिन्ट मीडिया में जमीन आसमान का अंतर होता है। प्रिन्ट मीडिया से जुड़े पत्रकार के पास पर्याप्त समय होता है जिसके कारण वह किसी भी खबर की अच्छी तरह से जांच पड़ताल कर लिख सकते हैं। दूसरी ओर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में 24 घंटे के भीतर कई खबरों को प्रसारित करने का तनाव होता है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में घटना को प्रस्तुत करने का तरीका भी बड़ा चौकाने वाला होता है जोकि नाटकीय ढंग से पेश किया जाता है। हालांकि मीडिया सरकार और जनता के बीच एक माध्यम की भूमिका अदा करता है। मीडिया वही प्रस्तुत करता है जो पुलिस और घटना से जुड़े लोग घटना के विषय में बताते हैं। इस प्रकार मीडिया उनसे प्राप्त जानकारी से ही खबरों का निर्माण करने लगता है।

प्रियंका सरीन, हिन्दुस्तान

नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है कि भारतीय मीडिया को लोकनिन्दा की परवाह नहीं है। भारतीय मीडिया अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, आतंकवादी गतिविधियों, देश की संप्रभुता और अखण्डता को लेकर शत प्रतिशत मानवाधिकार के संरक्षण की भूमिका निभाता है, परन्तु जब बात क्षेत्रीय मामलों की आती है तब भारतीय मीडिया अपना एक तरफा रूख अपना लेता है। फिर भी भारतीय मीडिया अपनी रिपोर्टिंग आदि के माध्यम से दुराचार और मानवाधिकार के हनन होने से बचाता है।

रजनीकांत मिश्रा, राष्ट्रीय सहारा

वर्तमान समय में मीडिया के क्षेत्र में भेड़, बकरियों की तरह चैनल खुल रहे हैं। आज कई बड़े व्यावसायी अपने व्यावसायिक कुटिलता को बड़े ही सूझ बुझ के साथ मीडिया के क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं। चाहे विनायक सेन मामला हो या फिर अन्ना व रामदेव का जनांदोलन, शुरूआती दौर में तो मीडिया बड़े ही सच्चाई और ईमानदारी के साथ खबरों को प्रस्तुत करता है लेकिन बाद में धीरे–धीरे वो अपने वास्तविक पथ मार्ग से भटक जाता है। इसलिए यह कहना पूर्णतया सत्य होगा कि आज मीडिया तटस्थ रिपोर्टिंग से कोसो दूर है।

आशीष प्रताप सिंह, पीटीसी न्यूज

परिचर्चा का विषय वास्तव में बहुत सोचनीय है। देश का चौथा स्तम्भ मीडिया आज कहां खड़ा है, यह तो मीडिया में शीर्ष पर बैठे लोग भी स्पष्ट रूप से बता पाने में असमर्थ हैं, क्योंकि वास्तविकता सबके ध्यान में है पर बोलना कोई नहीं चाहता। बात अगर जवाबदेही की हो तो इन चारों स्तम्भों में शायद ही कोई अपवाद मिले जो पूर्ण रूप से अपनी सहमति इस पर जता सके। इस बाबत कोई टिप्पणी कर व्यर्थ में समय गवाना होगा क्योंकि यह ध्रुव सत्य है कि आज देश का चौथा स्तम्भ अपने पथ से भटक चुका है।

सोहन लाल, आज समाज ■

"पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश के आर्थिक – सामाजिक विकास में स्थानीय समाचार पत्रों की भूमिका तथा पाठकों की प्रतिकिया"

शोधार्थी :– धीरज श्रीवास्तव, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

जनसंचार माध्यमों द्वारा राज्य के सूचनात्मक एवं प्रेरणात्मक संदेश जन सामान्य तक पहुंचते हैं, इसी कारण आर्थिक – सामाजिक विकास में इन माध्यमों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। आज के युग में, जबकि संचार माध्यमों में बहुत अधिक विविधता है, ये माध्यम विकास की प्रक्रिया में और भी अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं और एक नए उद्योग के रूप में तेजी से विकसित हो रहे हैं। आज रेडियो स्टेशनों, एफ.एम. चैनलों, टी.वी. ट्रांसमीटरों और टी.वी. चैनलों की संख्या तो तेजी से बढ़ ही रही हैं, साथ ही इनके प्रसारण घंटों में भी लगातार वृद्धि हो रही है। प्रिंट मीडिया अर्थात अखबारों तथा मैग्जीनों की संख्या एवं पृष्ठों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई हैं। परन्तु यह वृद्धि किसी निश्चित उद्देश्य तथा योजना के अन्तर्गत नहीं हैं, बल्कि इस वृद्धि का कारण केवल माध्यम विशेष के मालिकों की पैसा तथा शक्ति अर्जित करने की लालसा के कारण हुई हैं।

जनसंचार माध्यमों का सदुपयोग वृहत्तर उद्देश्यों जैसे समाज एवं राष्ट्र के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए किया जा सकता है। संचार माध्यमों के इस उपयोग से पत्रकारिता की एक नई विधा का जन्म हुआ है और वह है विकास पत्रकारिता।

सामाजिक–आर्थिक विकास के क्षेत्र में जनसंचार माध्यमों के बढ़ते महत्व के कारण विकास पत्रकारिता के अध्ययन एवं शोध की आवश्यक्ता भी लगातार बढ़ रही हैं और संचार संस्थानों एवं सरकार दोनों में इसके प्रति जागरूकता आयी है। विकास पत्रकारिता के अध्ययन की आवश्यकता को बहुत पहले 1969 में, मॉन्ट्रियल (कनाडा) में आयोजित 'जन संचार एवं समाज' विषय पर आयोजित मीटिंग में महसूस किया गया था और इस क्षेत्र में शोध के लिए जिन विषयों की सिफारिश की गयी थी, वे हैं राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा तथा विकास कार्यक्रमों में संचार की भूमिका, विशेषकर कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवार नियोजन तथा प्रौढ़ शिक्षा इत्यादि।

आज तीसरी दुनिया के शोधकर्ता विकास पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत अधिक क्रियाशील हैं। तथापि आज भी तीसरी दुनिया के देशों में होने वाले विकास पत्रकारिता से सम्बन्धित शोध कार्यों में पश्चिमी विकसित देशों के सिद्धान्तों एवं प्रारूपों का ही प्रयोग हो रहा है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। कोपेल (1983) के अनुसार भारत में अभी भी विकास पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में शोध केवल सैद्धान्तिक ही है और इसका प्रायोगिक पक्ष अधिकतर उपेक्षित रहा है। हमारे देश की महत् जनसंख्या से सम्बन्धित आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को जनसंचार माध्यमों द्वारा समाज के बहुत छोटे वर्ग तक ही पहुंचाया जा सका है। इसके अनेक कारण हैं, जैसे– विकास पत्रकारिता के क्षेत्र में शोध अभाव, जिसके कारण विभ्रम की स्थिति बनी हुई है, क्योंकि इस क्षेत्र में अनेक सिद्धान्त, प्रारूप एवं विचार प्रचलित हैं जो अंततः ओवर लैपिंग हैं और कुछ तो निषेधात्मक भी हैं। इस कारण विकास पत्रकारिता के क्षेत्र में शोध आवश्यक है।

प्रस्तावित शोध कार्य में विकास सम्बन्धी रिपोर्टिंग के संख्यात्मक मापन के लिए शोधार्थी ने चार हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों के अन्तर्वस्तु विश्लेषण को सम्मिलित किया है तथा इस बारे में जन सामान्य के विभिन्नि समूहों की राय ज्ञात करने के लिए ओपीनियन सर्वे का प्रयास किया है। यह अध्ययन शोधकर्ताओं, मीडियाकर्मियों तथा नीति निर्धारकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

पूर्वी उत्तर प्रदेश की बात अगर करें तो यह क्षेत्र जनसंख्या के आधार पर जहां काफी अधिक विकास कर रहा है, वहीं रोजगार और शिक्षा के क्षेत्र में अभी भी काफी पीछे है। इसका सबसे बड़ा कारण लोगों में जागरूकता का अभाव होना भी कहा जा सकता है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में जनसंचार माध्यमों के द्वारा इस ओर काफी प्रयास किया जा रहा है, जिससे यहां की शिक्षा व्यवस्था में काफी परिवर्तन हुए हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार, जहां एक ओर देश में साक्षरता दर 64.84 प्रतिशत है, वहीं अकेले उत्तर प्रदेश में साक्षरता प्रतिशत 56.30 है, जिसमें पुरूषों का प्रतिशत 68.80 तथा महिलाओं का 42.20 है।

शोधार्थी ने पूर्वी उत्तर प्रदेश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में समाचार पत्रों की भूमिका पर जो प्रकाश डाला है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। इस प्रकार के शोधों के माध्यम से समाज को एक नई दिशा देने के लिए मार्ग प्रशस्त होता है, जो देश व समाज के विकास के लिए अति आवश्यक होता है। ■

1. **स्लाट–** भंगिमा, मोड़, अर्थात किसी समाचार को किसी विशेष नीति, मत या उद्देश्य के अनुरूप प्रस्तुत करना।

2. **स्लग–** इसके दो अर्थ हैं– संकेत शब्द, जो समाचार की पांडुलिपि के प्रत्येक पृष्ठ पर दाहिने हाथ की ओर ऊपर लिखा जाता है। इसका अर्थ है– लाइन टाइप पर ढाले गए मुद्राक्षरों की एक पूरी पंक्ति।

3. **स्पॉट न्यूज–** इसके दो अर्थ हैं– समाचार पत्र कार्यालय के बाहरी भाग में बोर्ड पर प्रदर्शित किया गया समाचार, जिसके ऊपर अंग्रेजी में स्पॉट न्यूज और हिंदी में ताजा समाचार लिखा रहता है।

4. **स्टेट–** यह प्रूफ शोधन का एक शब्द है। इसका तात्पर्य है काटे हुए मैटर को ज्यों का त्यों रहने दीजिए, वह भूल से कट गया था।

5. **स्ट्रेट न्यूज–** वह समाचार जिसमें किसी प्रकार की भड़कीली सामग्री न जोड़ी गई हो।